IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 20, April 2026 Impact Factor: 8.2

JhenHkxorxhrk e ;kxrRoks dh egRrk ,d foopukRed v/;;u

fofiu dekj ik.M;
"kks/k Nk=] ;kx
ekukM fo'ofo|ky;] gkiM m- i-
Mk- luhy dekj Jhokl
Lkg vkpk;] ;kx
ekukM fo'ofo|ky;] gkiM m- i-

'kks/k Lkkjk'k % गीता सर्वशास्त्रमयी है, इसे सारे शास्त्रों का खजाना कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। गीता का भली–भॉति ज्ञान हो जाने पर सब शास्त्रों का तात्विक ज्ञान अपने आप हो सकता है, उसके लिये अलग परिश्रम करने की आव'यकता नहीं है। गीता में सभी प्रकार की विधायें विद्यमान हैं। इसमें वर्णित भाव स्थित–प्रज्ञ, जो कि प्राचीन भारतीय सनातन धर्म के अनुयायियों की मूल संस्कार तथा विचारधारा है। जो मोक्षदायी योग्यता धारण करने वाला है। संपूर्ण पृथ्वी के मानवों को अपना एक परिवार मानना तथा सुख–दुःख में सम्मिलित होना ही गीता एवं स्थित–प्रज्ञ का मूल स्वरूप है। जिसमें आतंकवाद, अलगाववाद, नक्सली, बेरोजगारी, अभावग्रस्तता तथा गरीबी सहित कोई भी मानव निर्मित भौतिक समस्या वि'व में न हो। साधक को उसके उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है, जिसके प्राप्ति के लिए कर्मयोग, भक्ति योग, ज्ञान योग, ध्यान योग आदि योगों का वर्णन प्राप्त होता है जिस पर चलकर साधक मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

e[;"kCn % श्रीमद्भगततगीता, योग, स्थित–प्रज्ञ।

iLrkouk % गीता संसार का प्रसिद्ध ग्रंथ है। गीता महाभारत के छठवें भीष्म पर्व का प्रारंभिक भाग है। गीता योग का मुख्य ग्रंथ है जिसमें योग के उच्च मार्गो का वर्णन किया गया है। गीता में योग, योगी और योग युक्त शब्द कई बार प्रयुक्त किये गये हैं। गीता योग का मुख्य ग्रंथ इसलिए भी है, क्योंकि इसके सभी अध्यायों का नाम ही योग से जुड़ा हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में स्थित प्रज्ञ का सार बताया है। स्थित–प्रज्ञ का अर्थ है कि जिसने पूर्ण रूप से अपनी व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना के साथ एक रूप करके अपनी इंद्रियों तथा मन को व्यष्टि से समष्टि की ओर पूर्णतः उन्मुख होकर, अविचल स्थिरता प्राप्त की है। गीता में इसका

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 20, April 2026 Impact Factor: 8.2

श्रुतिफल कहा है[1] कि– भगवान् भाँति–भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुए अर्जुन को कहते है कि जब तुम्हारी बुद्धि मुझमें अचल और स्थिर हो जायेगी, तब तुम योग को प्राप्त होकर मुझमें नित्य संयोग हो जाओगे। तात्पर्य अर्जुन अभी कर्म और श्रेय पथ में भिन्नत्व नहीं कर पा रहा है तथा वह व्यवहार से ज्ञान की बात कर रहा है तथा अंतःकरण में कर्तव्य कर्म से बचने के विचार उठ रहे हैं, जिसे भगवान् ने जानकर उसे समबुद्धि होकर योगयुक्त होने को कहा है।

भगवान् स्वयं अर्जुन को कहते हैं कि–

योगस्थः कुरू कर्माणि संङ्गम् त्यक्तवा धनञ्जय।।

श्रीमद्भगवद्गीता–2.48

हे धनंजय! तुम आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हो। इसप्रकार योग से युक्त रहकर विजय–पराजय से अविचलित हुये श्रेयपूर्ण कर्म किया जा सकता है और जो समता की बात भगवान कर रहे हैं कि समबुद्धि से युक्त पुरूष पुण्य–पाप को त्याग कर अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। जिससे समत्व की प्राप्ति होती है, यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता एवं कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता –2.50

यहॉ समत्वं एवं बुद्धियुक्तो के मुख्य लक्षण क्या हैं। जिसका उत्तर भगवान् ने गीता में 'स्थित–प्रज्ञ' के लक्षणों का विस्तार बताया है, ताकि स्थितप्रज्ञ को सहजता व विस्तार से समझा जा सके। परन्तु स्थित प्रज्ञ को समझने के लिए योग का भाव समझना आवश्यक है। गीता में योग शब्द का अर्थ–संयमन, सामर्थ्य, प्रभाव है। गीता में जहॉ कहीं योग शब्द आया है, वहॉ उपर्युक्त तीनों में से एक शब्द का अर्थ ही मुख्य है शेष दो गौण हैं।

भगवान् चित्त की वृत्तियों का निरूद्ध होने से निर्बीज अथवा निर्विकल्प समाधि फलित होना बताया है जिसका पूर्ण अर्थ 'समता' अर्थात् 'निर्विकल्प बोध' है। जिसे प्राप्त करने के लिए गीता में तीन योग मार्गों का वर्णन किया गया है– कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग। जिसको हम स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों से संबंधित मान सकते हैं। योग तथा स्थित–प्रज्ञ वृत्तिपरक चित्त की अवस्था है अथवा स्थितिपरक आत्मस्थिति है। गीता में ज्ञान समाधि है, पूर्ण बोध की समाधि है, सतत् परमात्म चेतना से अखण्ड रूप से जुड़े रहना समाधि है जिसमें स्थिरता तथा समता दोनों ही हैं। जो किसी मानदण्ड में सीमित नहीं है, वह न चढ़ती है न उतरती है अर्थात् वह एक स्थिति है– वृत्ति नहीं। ध्यान समाधि एक वृत्ति है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 20, April 2026 Impact Factor: 8.2

xhrk et ;kxrRo dk foopu &

जब चेतना उस परम के अनंत में प्रवेश करती है तब सारे तर्क, अलंकार, विवेक, सारे बाह्यावरण को बाहर ही छोड़कर उस ब्रह्म से एकीभूत हो जाता है। अर्जुन भगवान् से पूछते है कि हे केशव! समाधि में स्थित स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षण क्या हैं, वह स्थिर बुद्धि वाला पुरूष किस प्रकार, वह बातें कैसे करता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत् किमासीत व्रजेत किम्।।

स्वामी आत्मानंद, गीतातत्व–चिंतन, भाग–1 पृ.–451

तब भगवान् अर्जुन को सांख्य का ज्ञान तथा आत्मा की अमरता के बारे में सविस्तार बताया और कहा कि योगयुक्त, बुद्धियुक्त, ईश्वरपरायण, फलत्यागी, मुनि किस प्रकार जन्म–मरण के चक्र को तोड़कर मुक्त होता है।

जब बुद्धि का ज्ञान, आसक्ति तथा मोह वन को पार कर जाता है तब सच्चे वैराग्य के आयामों को अपने जीवन में जीवंत रूप से प्रतिष्ठित करके बड़े–बड़े प्रलोभनों से सदैव अछूता रहकर निष्पक्ष एवं अचलरूप से योग में स्थित हुआ जीवन का श्रेयपूर्ण ध्येय प्राप्त करता है –

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता– 2.55

भगवान के द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान यह भान करा दिया कि ज्ञानी कभी किसी जीवित या मृत के लिए शोकसंतप्त नहीं होता है।

भगवान कहते है कि– हे पार्थ! जब व्यक्ति अपने में ही अपने द्वारा संतुष्ट होकर मन में पैठी हुई समस्त कामनाओं को त्याग देता है, तब उसे स्थित–प्रज्ञ कहते हैं अर्थात् ''मन से सभी कामनाओं को छोड़ देना''।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता–2.56

तात्पर्य 'आत्म सन्तुष्टि'। मन की सारी इच्छायें उस परम की क्रियाविधि में हस्तक्षेप नहीं करती हैं, बल्कि अपना स्वरूप ही बदल देती हैं। अर्थात् ^^vkReU;ksokReukr|'V** यह एक परम स्वीकृति भरा स्थित–प्रज्ञ का लक्षण है। जो समस्त कामनाओं को त्यागकर स्वयं में संतुष्ट रहने पर प्राप्त होता है।

अतः प्रतिदिन मनोयोगपूर्वक मन को कामनारहित बनने से जीव को यह साक्षात्कार होता है कि नित्य

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 20, April 2026 Impact Factor: 8.2

शाश्वत, अविनाशी, अव्यय, अविकारी, चिरंतन, निरंजन, आत्मा, ब्रह्म उसी के हृदय में प्रतिष्ठित है वैसे ही उसी क्षण वह समस्त कामनाओं का त्यागकर आत्मसंतुष्ट हो जाता है। भगवान कहते भी हैं –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

श्रीमद्भगवद्गीता–2.56,57

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है तथा जो पुरूष सर्वत्र स्नेहरहित होकर शुभ–अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। ज्ञानी पुरुष के लिए सुख–दुःख विवर्त हैं।

भगवान् ने कहा है कि 'न द्वेष्टि' अर्थात् स्थिर बुद्धि योगी किसी से भी द्वेष नहीं रखता है। जबकि 'द्वेष' आज मानव जीवन का अभिन्न अंग बना हुआ है, परंतु योगी को यह स्पर्श नहीं कर सकता है क्योकि उसका संबंध परमात्म सत्ता के साथ जुडा हुआ है। भगवान् बड़ी सूक्ष्म बात कहते हैं कि देह पर अभिमान रखने, अल्पाहारी या निराहारी साधक कभी उस परिपूर्ण स्थिर प्रज्ञा को उपलब्ध नहीं हो सकते हैं क्योंकि उनके मन में अहंकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म रस व आसक्ति शेष रह जाती हैं। परन्तु देह अभिमानी, वासना व रसेच्छा से न छूट सकने वाले व्यक्ति के लिए भगवान् कहते हैं कि &

यततो ह्यापि कौन्तेय पुरूषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

श्रीमद्भगवद्गीता–2.7

हे कौन्तेय! यत्नशील बुद्धिमान पुरूष के मन को भी मथ देने वाली इन्द्रियॉ बलपूर्वक विषयों में खींच लेती हैं। अतः उन सभी इन्द्रियों को संयमित करके, समाहित चित्त होकर, मेरे परायण अवस्थित रहे, क्योंकि जिसकी इन्द्रियॉ वश में होती हैं उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है।

साधन परायण बुद्धिमान पुरूष की इन्द्रियॉ सर्वथा वश में नहीं होती। इस समस्या से छूटने के लिए योगी एवं ऋषियो ने अनेक उपाय बताते हैं कि जो व्यक्ति जैसी इच्छा करता है उसके अंतःकरण में वैसा ही घटता है अर्थात् चिंतन स्वरुप उसके प्रति भोगेच्छा का उदय होना भी संभव है। जिस पर भगवान् कहते है

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 20, April 2026
Impact Factor: 8.2

कि–

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।।

श्रीमद्भगवद्गीता–2.56

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरूष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से क्रमशः विषयों की कामना, क्रोध, मूढ़भाव, स्मृति में भ्रम, भ्रम से बुद्धि का ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से पुरूष अपनी स्थिति से गिर जाता है। परंतु इसके विपरीत की दिशा आत्मा की ओर ले जाती है। तात्पर्य मैं अपने अंदर जो देखता हूँ, वही हो जाता है। विचार मुझे जो कुछ सुझाता है, वह मैं कर सकता हूँ। विचार मुझे जो कुछ दर्शाता है, वह मैं बन सकता हूँ। मानव में यह अटल विश्वास ही उसके अंदर भगवान् निवास का अनुभव कराते हैं।

egRo % विश्व वसुधा को सदैव अध्यात्म के अपूर्व प्रकाश से आलोकित करता रहा है, भारत। परमात्मा के भिन्न अवतारों तथा सिद्धों, साधु, सन्तों के द्वारा सदैव दिव्य प्रकाश साधारण जनमानस में उतरता रहा है। उत्थान–पतन, दिन–रात, सुख–दुःख, ऊष्ण–शीत ये सब एक के बाद एक क्रम में आते रहते हैं। भगवान तो साकार और निराकार दोनों ही हैं, वह कर्मयोगी के समस्त कर्मो का नियंत्रणकर्ता भी है और भक्त के भावों को सम्हालने वाला स्वामी तथा करूणासागर भी है।

श्रीमदभगवत्गीता भगवान श्रीकृष्ण के मुख से, भ्रमित बुद्धि अर्जुन को मिला था। श्रीमद्भगवत्गीता में साधना, ज्ञान, योग, भक्ति, कर्म आदि के विभिन्न पक्षों पर बहुत स्पष्ट अपूर्व प्रकाश डाला है। भगवान श्रीकृष्ण तथा श्री महान पावन ग्रंथ का एक–एक शब्द, श्लोक जीवन रूपान्तरित करने में समर्थ है। हमने अपनी भारतीय संस्कृति में अनेकोनेक ऐसे अपूर्व उदाहरण और सन्त–चरित्र, साधु–प्रसंग पाये हैं जो श्रीमदभगवत्गीता के पठन, श्रवण, मनन से अपना सारा जीवन ही रूपान्तरित कर गये। तो भगवद्गीता भले ही आत्म–साक्षात्कार के अनेक मार्ग बताती है परन्तु उसका लक्ष्य और ध्येय तो यही है कि कैसे जीवन रूपान्तरित होकर दिव्य हो जाये, ऐसा जीवन जिसके प्रत्येक कर्म से स्पष्ट भगवत्ता का ही विकिरण फैले, सतत् परमात्मा चेतना का ही प्रकाश प्रस्फुटित हो। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने जीवन के माध्यम से दिखाया और समय की आवश्यकता पड़ने पर अर्जुन को क्रमशः समझाया। चाहे कोई ज्ञान के मार्ग से जाये, या कर्म के मार्ग से, भक्ति से या योग के मार्ग से परन्तु उसे अन्ततोगत्वा योगी ही होना है तो क्या है यह योग? इसका जीवन में आविर्भाव जीवन में संभव है या नहीं। यदि है तो फिर जीवन किस प्रकार का होगा, क्या बदलेगा और क्या नया होगा, तो ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर के प्रयास है यह शोध प्रबंध। क्या कोई ऐसा आदर्श भी हमारे सम्मुख है, तो उत्तर है, हॉ। प्राचीन योगियों को पूरा जीवन ही योग की पराकाष्ठा को प्रकट करता है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 20, April 2026 Impact Factor: 8.2

श्रीमद्भगवद्गीता के शब्दों की शक्ति को अपने जीवन में उतार सकते हैं तथा कैसे अपना जीवन श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर दिशा में गति देते हुए आगे बढ़ सकते हैं। पश्चिम जगत का तर्कज्ञान, भौतिक ज्ञान तथा पूर्व की आध्यात्मिक ऊँचाईयॉ एक साथ, एक ही समय में प्रकट होती हैं। यथा–

1. **l[k&n[k e le &** सुख की अतिशय इच्छा करना ही राग है, जबकि स्थिर बुद्धि रागरहित है। 'राग' प्रेम का ही रूप है। इसी प्रकार शुद्ध प्रेम अपने में पूर्ण है वहा दूसरे के होने न होने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रेम अद्वैत की अनुभूति है। भय भी तभी उत्पन्न होता है जब हमारे मन की पूर्वाग्रही मान्यतायें, आशाएँ टूटती हैं। अर्थात् संसार के विषय के भोग की वृत्ति मन में 'राग' उत्पन्न करती है तथा जब 'राग' की प्राप्ति में विघ्न होता है तो मन में 'भय' पैदा होता है। ''अनुकूल वेदना से तृष्णा उदय होती है, प्रतिकूल वेदना से क्रोध। भय भी क्रोध का ही, प्रतिकूल वेदना का ही, एक रूप है।'' श्रीमद्भगवद्गीता–2.62

- **lo= le nf'V &** व्यक्ति यदि व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक मर्यादाओं का संबंध, भौतिक संपदा या आध्यात्मिक जगत की सिद्धियॉ उन सबके प्रति अनासक्त भाव, स्नेह रहित होना ही अंतिम उत्कर्ष के लिए आवश्यक साधना है और इस स्नेह रहित स्थिति की असली परीक्षा शुभ–अशुभ अवसरों पर समान व्यवहार रखने से ही होती है,

- **n%[k&l[k e le 0;ogkj djuk &** हम परमात्मा को एक कुम्हार मान सकते हैं और हम तो साधारण कच्ची मिट्टी हैं जिसप्रकार खूब कूट–पीटकर कच्चे घड़े का रूप देता है तथा फिर उस कच्चे घड़े को लंबे समय तक चोट पर चोट मारता है परंतु साथ ही अंदर से सहारा देता है ताकि अंदर से घड़ा विचलित होकर कहीं टूट न जाये। वह परमात्मा के विभूति रूपों का अनावृत्त दर्शन तथा उनका अपने रूप के साथ अद्वैत अनुभूति होती है।

- **ftrfUn;; rFkk o"korh vUr%dj.k okyk &** भगवान् कृष्ण, अर्जुन को एक कछुए के उदाहरण से समझाते हैं कि स्थित–प्रज्ञ को अपनी इंद्रियों पर कछुए की भांति ही वश होना चाहिए जो समय अनुकूल न होने पर अंदर समेट ले तथा अपने बाह्य आवरण को ही अपनी सुरक्षा का दुर्ग बना ले। अपने इंद्रियों को विषयों से दूर हटा देने पर अथवा उनसे अपने आसक्ति को हटा देने पर सभी प्रकार के क्लेशों से मुक्ति हो जाती है कि देवलोक सहित समस्त संसार के शारीरिक तथा मानसिक दुःख का मूल काम–भोगों की वासना ही है। जो साधक इससे वीतराग हो जाता है, वह शारीरिक व मानसिक कष्टों से छूट जाता है।

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जे काइयं माणसियं च किंचि, तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो।।

श्रीमद्भगवद्गीता–2.60

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 20, April 2026 Impact Factor: 8.2

अतः चेतना के उत्कर्ष के समय हमें कई प्रकार के प्रलोभन आयेंगे तब हमें बहुत सावधान रहना चाहिए।

mi lgkj&

प्रस्तुत शोध पत्र में जीवन के आदर्श लक्ष्य, जीवन–वृत्त तथा जीवन–साधना को संक्षेप में बताने का एक प्रयास है, यह कार्य मैं मात्र एक–उद्देश्य को लेकर करने के लिए प्रेरित हूँ कि आज के गिरते समाज को गीता और योग आध्यात्मिक जीवन की शक्ति को ऊँचा उठा सकती है। चित्त की प्रसन्नता अर्थात् परमात्मतत्व से एकरूपता के साक्षात्कार करने के पश्चात अंदर से उल्लास प्रकट होता है तथा चित्त शुद्धि होने पर संपूर्ण दुःखों का नाश अर्थात् कोई दुःख नहीं रहता है तथा सभी प्रकार के आसक्ति से भी मुक्ति हो जाती है। क्योकि प्रसन्न चित्त वाले की बुद्धि शीघ्र ही परमात्मा में स्थिर होती है। इसमें स्थित–प्रज्ञ के लिए किंचित्मात्र संदेह नहीं होता।

lanHk xzUFk lph&

1. शास्त्री, जगदीश, मोतीलाल, 1980, योग तत्वोपनिषद्, बनारसीदास, वाराणसी
2. गोयन्दका जयदयाल, 2005, श्रीमद्भगवद्गीता तत्व–विवेचन, हिन्दी टीका, गीताप्रेस, गोरखपुर
3. दत्त, शास्त्री रामनारायण, 1959, महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर
4. कुमार, डॉ0 कामाख्या, 2010, मानव चेतना एवं योग विज्ञान, प्रकाशक–ड्रोलिया पुस्तक भण्डार, साधुबेला, हरिद्वार, उत्तराखण्ड प्रथम संस्करण
5. पं. श्री राम शर्मा आचार्य, 2015, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, प्रकाशक–युग निर्माण योजना, मथुरा
6. अरविन्द ,श्री, 2000, गीता प्रबंध, श्री अरिवन्द आश्रम, पांडिचेरी
7. आरण्य स्वामी हरी हरानंद,1974, पातंजल योगदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
8. विवेकानंद स्वामी, 2015, भक्तियोग, प्रकाशक–प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली,